वीर संवत् २४९२, पोष कृष्ण १३, बुधवार
दि. १९-१-१९६६, श्लोक ७ से १२, प्रवचन नं. ३

इस 'छहढाला' में पहली ढालचलती है। छह प्रकार के देशी भी है और छह प्रकार के कथन की विधि भी है, परन्तु अन्तर है, प्रत्येक में भिन्न है न ? प्रत्येक ढाल में ! पहली ढाल में वहाँ से लिया है - निगोद से लेकर दुःख का वर्णन किया है। क्यों किया ? - यह दूसरी ढाल मैं आयेगा। दूसरी ढाल है न ? उसमें आयेगा। देखो ! '**ऐसे मिथ्याद्रग-ज्ञान-चर्ण, वश...**' दूसरी ढाल का प्रथम श्लोक है न ? वर्णन करने का हेतु क्या है ? कि अनादि का अज्ञानी आत्मा, मिथ्याश्रद्धा - मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के वश होकर चारगति में दुःखो को सहन करता है - यह बात सिद्ध करना है।

आत्मा के भान बिना... आत्मा अन्तर शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के बिना (दुःख सहन किये), इसलिए स्वामी 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में बोधिदुर्लभभावना में ही यह व्याख्या है। अनन्तकाल चौरासी के अवतार में... यहाँ लिया है निगोद से, 'स्वामी कार्तिकेय' ने भी इसी प्रकार लिया है। निगोद से निकलकर और कोई पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु होता है। वहाँ कोई मनरहित पशु होता है, कोई मनवाला पशु होता है; वहाँ से मरकर नरक जाता है, वहाँ से मरकर कोई मनुष्य होता है; वहाँ से मरकर कोई देव होता है - ऐसे इसप्रकार भाईने वर्णन लिया है, यह शैली आचार्य की शैली है। वह शैली यहाँ ली है।

आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है। उसके अन्तर के सम्यग्दर्शन और ज्ञान बिना उसने चौरासी के अवतार अनन्तकाल से एक-एक में जन्म-मरण किया है। उसके दुःख का वर्णन करते हैं। वे दुःख प्राप्त क्यों हुए ? मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र के कारण। इसलिए दूसरी ढाल में यह कहा कि - '**ऐसे मिथ्याद्रग-ज्ञान-चर्ण वश...**' ऐसा कहा न ? '**भ्रमत भरत दुःख, जन्म-मर्ण; ता तैं इनको तजिये सुजान, सुनतिन संक्षेप कहूँ बरवान।**' यह पहली ढाल में दुःख का वर्णन बताने का हेतु कि मिथ्या दर्शन-ज्ञान के कारण से ऐसे दुःख सहन किये; इसलिए मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र को छोड़ और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अंगीकार कर। यह बताने के लिए यह बात की है।

तिर्यंचगतिमें निर्बलता तथा दुःख

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन;
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम आतप त्रास।।७।।

अन्वयार्थ :- [यह जीव तिर्यंच गतिमें] (कबहूँ) कभी (आप) स्वयं (बलहीन) निर्बल (भयो) हुआ [तो] (अतिदीन) असमर्थ होनेसे (सबलनि करि) अपनेसे बलवान प्राणियो द्वारा (खायो) खाया गया [और] (छेदन) छेदा जाना, (भेदन) भेदा जाना, (भूख) भूख, (पियास) प्यास, (भार-वहन) बोझ ढोना, (हिम) ठण्ड, (आतप) गर्मी [आदिके] (त्रास) दुःख सहन किये।

भावार्थ :- जब यह जीव तिर्यंचगतिमें किसी समय निर्बल पशु हुआ तो स्वयं असमर्थ होने के कारण अपनेसे बलवान प्राणियों द्वारा खाया गया; तथा उस तिर्यंचगतिमें छेदाजाना, भेदा जाना, भूख, प्यास, बोझ ढोना, ठण्ड, गर्मी आदिके दुःख भी सहन किये।।७।।

अब, अपने यहाँ छह गाथा पूर्ण (हुई है), सातवीं आयी है। तिर्यंचगति के निर्बलता के दुःख।

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन;
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम आतप त्रास।।७।।

क्या कहा ? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा देखा कि इसने अनादि से निगोद के अनन्त दुःख सहन किये। एक श्वास में अठारह भव धारण किये। यह बात आ गयी है न ? वहाँ से कदाचित् कोई मरा तो एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति में आया। उसमें से त्रसपना प्राप्त करना तो महारत्न की तरह दुर्लभ कहा है न अन्दर ? जैसे चिन्तामणिरत्न प्राप्त करना दुर्लभ है, उसी प्रकार एकेन्द्रिय में से त्रसपना प्राप्त करना महादुर्लभ है। यह सब शैली से वर्णन किया है। यह

शास्त्रानुसार वर्णन किया है। समझ में आया ?

अब, यहाँ कहते है कि उसमें से तिर्यंच में आया। निगोद में से (निकलकर) मनवाला प्राणी हुआ। उसमें कैसे दुःख सहन किये - यह बात करते हैं। '**(यह जीव तिर्यंचगति में) कभी (स्वयं) कमजोर हुआ...**' मिथ्यादर्शन-ज्ञान के कारण से पशु में अवतरित हुआ। समझ में आया ? इस कारण अन्दर यह बताना है - मिथ्याश्रद्धा - मिथ्याज्ञान के कारण ऐसे तिर्यंच में अवतरित हुआ, बलहीन हुआ - कमजोर (हुआ), '**(तो) असमर्थ होने से अपने से बलवान प्राणियों के द्वारा खाया गया...**' संयोग से दुःख का कथन किया है, हाँ ! समझ में आया ? देखो ! इसमें है। है न इसमें ? यह चिन्ह दिया है, क्या कहलाता है ? चित्र बलहीन जो हिरण है, देखो ! उसे चीता पीछे पकड़ता है, ऐसा। उसमें सामने वृक्ष आता है, इसमें सामने वृक्ष है। समझ में आया ? हिरण का भव किया। मिथ्याश्रद्धा - मिथ्याज्ञान द्वारा निगोद में से निकलकर पन्चेन्द्रिय हुआ, वहाँ दीनता के कारण सिंह ने मारा। समझ में आया ? और फिर विशेष कहेंगे, देखो !

'**बलवान प्राणियों द्वारा खाया गया...**' खाया गया अर्थात् ? उसका शरीर खाया गया। शरीर खा जाने से व्याख्या की है। समझ में आया ? शरीर खाया गया। किसने खाया ? देखो ! दूसरे शरीर खा सकते है न ? भाई !

मुमुक्षु :- नहीं साहेब !

पूज्य गुरुदेवश्री :- तो यह क्या खाया गया ? यह तो संयोग से दुःख का वर्णन करते हैं कि

निर्बल प्राणियों को सबल प्राणीने महा प्रहार करके मारा। गर्म पानी छिड़का। चूहे को उसमें पकड़ते है न ? पिंजरे में। पिंजरे में चूहे को पकड़कर ओर फिर से धगधगता गर्म-गर्म पानीडालते हैं। धगधगता पानी, हाँ ! नज़रों से देखा है, वहाँ हमारे 'पालेज' में मुसलमान की दुकान है, अनाज की दुकान, इसलिए चूहे बहुत होते हैं। उसका एक व्यक्ति चूहे पकड़कर निकला था, वहाँ ऊपर से धगधगाता पानी डालता था। ऐसे दुःख (सहन किये।) अब, चूहे को कहाँ जाय ? यह तो संयोग से वर्णन करते हैं। राग... राग... एकत्वबुद्धि है न ? शरीर और राग मैं हूँ... शरीर और राग मैं हूँ; चिदानन्द भगवान आत्मा का पता नहीं, इसलिए ऐसी एकत्वबुद्धि के कारण खाया गया, पकाया गया, मारा गया - ऐसे दुःख अनन्त बार वहाँ सहन किये। कहो, समझ में आया ?

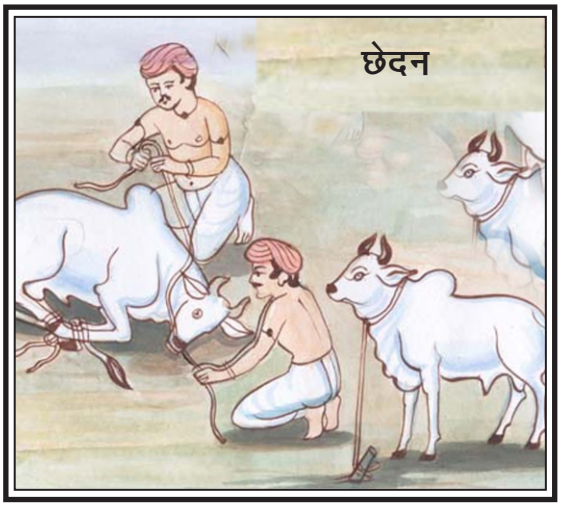

'**छेदा जाना...**' तो ! है न इसमें इस ओर ? देखो ! यहाँ छेदते हैं। इस पशु को नहीं छेदते ? नथ बाँधते है, बाँधकर नपुसंक करते हैं, इन्द्रिय काटते है। यह ऐसा करके (छेदते हैं।) भगवान आत्मा, अपनी शान्ति का आनन्द स्वभाव, उसे अनादि से भूलकर इसने अनादि से ऐसे दुःख सहन किये है। समझ में आया ?

भेदन

'**भेदा जाना...**' भेदा गया, टुकड़े किये। लो ! देखो ! शिकारी अथवा कषायी लोगों ने पकड़कर एकदम टुकड़े करता है। 'राजकोट' में कषायी के घर के पास से दिशा (जंगल) जाने को निकलते है न ? खट... खट... ऐसे काटता होता है। ऐसे दुःख, आत्मा को भूलकर शरीर और राग की एकता में, आस्रव और अजीव की एकता में (प्राप्त किये हैं।) - ऐसा अभी कहना है। समझ में आया ? आस्रव और अजीव भित है, उसके भान बिना उनकी एकता में ऐसे दुःख अनन्तबार सहन किये हैं। इसका विशेष स्पष्टीकरण आगे करेंगे।

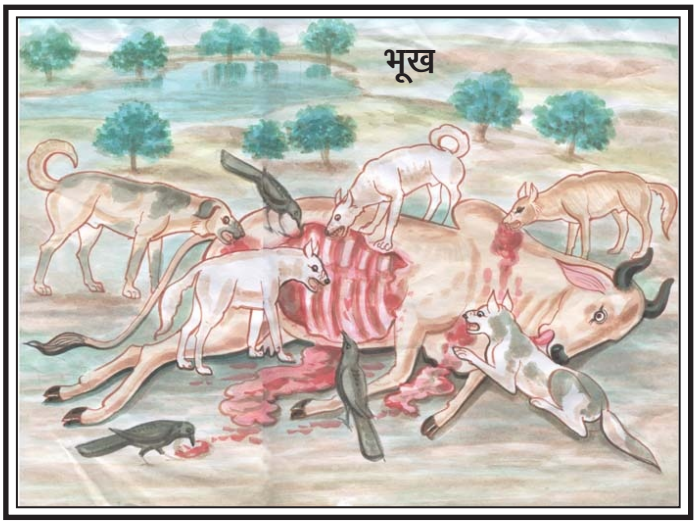
भूख

फिर '**भूख...**' लगी, भूख - क्षुधा। पशु को कितनी क्षुधा लगती है, देखो न ! समझ में आया ? मिलता नहीं बिचारे कुत्ते तो... 'कुत्ते के भव में मैं ढूढ खाये टुकड़े, वहाँ भूख का सहा भड़का' - ऐसा पहले 'पालेज' में सुनते थे। भाई ! 'पालेज' में ऐसी बातें होती है न ? वहाँ दूसरी ऐसी तत्त्व की बात कहाँ थी ? उसमें एक साधु 'पालेज' में आते थे, फिर ऐसा पहले गाते। लो ! पहले सुना हुआ यह। 'कुतरा ना भवमां में

वीणी खाया कटक्या, त्यां भूख ना बेठ्या भड़का रे...' भूधरजी तमने भूल्यो। भूधरजी अर्थात् भगवान को भूला, ऐसा। वहाँ मन्दिरमार्गी का मन्दिर है न, वहाँ उतरे; फिर हम रात्रि को जाए, यह बात करते। तत्त्व की बात तो थी नहीं। ऐसे दुःख सहन किये - यह (कहे)। वहाँ भी ऐसा था, 'दामनगर' ! नारकी का चित्र बताये। पहलेके पुराने साधु होय न ? देखो ! हुक्का पीये तो ऐसा होगा; बीड़ी पीये तो ऐसा होगा; परस्त्री को भोगेगे तो ऐसा होगा। उनको ऐसे दुःख बताये; परन्तु ये दुःख बताने का हेतु क्या है ? है ? मिथ्याश्रद्धा-आत्मा के भान बिना इसने विकार और संयोगी वस्तु को अपनी मानकर स्वभाव को भूल गया। उस भूल में इसने ऐसे अनन्त भ्रमण किये हैं।

'**प्यास...**' यह पानी का प्यास। यह पशु की बात है, हाँ ! अभी। '**बोझा ढोना..**' सिर पर बोझा (ढोना)। देखो ! यहाँ किया है न ! देखो ! इतना भार है तो बैल ऐसे गिर जाता है। 'कलकत्ता' में सौ-सौ मण भार भरते है, नहीं ? है ? पता है। लम्बी गाड़ी और इतना भार भरते हैं, बोझा भरते हैं। भार-वहन, छेदन-काटा जाना, ऐसे दुःख अनन्तबार सहन किये हैं।

भारवहन

'**ठण्ड...**' जंगल में सर्दी पड़े और ये हिरण के छोटे-छोटे बच्चे... हा...य... ठण्डी में ठिठुर जाते हैं। '**गर्मी...**' गर्मी ऐसी पड़ती है कि ऐसे छोटे त्रस मर जाते हैं। देखो न ! यह चकला और मैना नही आते ? गर्मी में चकला, मैना एसे हाँफ-हाँफकर मर जाते हैं, बहुत गर्मी लगती है। ऐसे दुःख प्रत्येक जीव ने अनन्तबार सहन किये हैं। चार गति में, इसमें तिर्यंचगति की बात है। '**दुःख सहन किये।**' लो ! समझ में आया ?

'भावार्थ :- जब यह जीव तिर्यंच गति में किसी समय निर्बल पशु हुआ तो स्वयं असमर्थ होने के कारण अपने से बलवान प्राणियों के द्वारा मारकर खाया गया; तथा उस तिर्यंचगति में छेदाजाना, भेदाजाना, भूख, प्यास, बोझा ढोना, ठण्ड, गर्मी आदि के दुःख भी सहन किये।'

तिर्यंच के दुःखकी अधिकता और नरक गति की प्राप्तिका कारण

बध बंधन आदिक दुख घने, कोटि जीभतैं जात न भने;
अति संक्लेश भावतैं मरयो, घोर श्वभ्रसागरमें परयो।।८।।

अन्वयार्थ :- [इस तिर्यंचगितमें जीवने अन्य भी] (बध) मारा जाना, (बंधन) बँधना (आदिक) आदि (घने) अनेक (दुख) दुःख सहन किये; [वेज (कोटि) करोडों (जीभतैं) जीभोंसे (भने न जात) नहीं कहे जा सकते। [इस कारण] (अति संक्लेश) अत्यन्त बुरे (भावतैं) परिणामोंसे (मरयो) मरकर (घोर) भयानक (श्वभ्रमसागरमें) नरक रूपी समुद्र में (परयो) जा गिरा।

भावार्थ :- इस जीवने तिर्यंचगतिमें मारा जाना, बँधना आदि अनेक दुःख सहन किये, जो करोडों जीभोंसे भी नहीं कहे जा सकते। और अन्तमें इतने बुरे परिणामों (आर्तध्यान) से मरा कि जिसे बड़ी कठिनाईसे पार किया जा सके ऐसे समुद्रसमान घोर नरकमें जा पहुँचा।।८।।

'**अब तिर्यंच के दुःख की अधिकता और नरकगति की प्राप्ति का कारण**' यहाँ से नरक लिया है, भाई ! 'स्वामी कार्तिकेय' ने ऐसा लिया है - निगोद से तिर्यंच और तिर्यंच से नरक।

बध बंधन आदिक दुख घने, कोटि जीमतैं जात न भने;
अति संक्लेश भावतैं मरयो, घोर श्वभ्रसागरमें परयो।।८।।

'**(इस तिर्यंचगति में जीव ने अन्य भी) मारा जाना, बँधना...**' देखो न ! यह शिकारी लोग अथवा कषाईखाने में... '**आदि अनेक दुःख सहन किये...**' ग्रन्थकार कहते हैं कि इन तिर्यंच के दुःखो को हम करोड़ो जीभों से कहें तो नहीं कहे जा सकते। करोड़ो जीभों से कहें तो उनके दुःख (नहीं कहे जा सकते।) भूल गया, परन्तु भूल जाता है न ? मनुष्य होवे वहाँ भूल

जाता है न ? '**करोड़ो जीभों से नहीं कहे जा सकते।**' ऐसे तिर्यंच के दुःख। काटे, टूकड़े करे।

एकबार 'धंधुका' में एक बड़ी गाय को भले प्रकार श्रृंगार करके गाँव में घुमाया था। उस गाय को रात्रि में पूरी तरह बाँधकर, मुँह बन्द करके बाँधी। मुसलमानों ने किया था, 'धंधुका' में मुसलमानों ने (किया था।) फिर बारीक... बारीक... बारीक... टूकड़े करके काट दिया, फिर उसे बाँट दिया। आहा...हा...! समझ में आया ? पशु के ऐसे दुःख ! आत्मा के भान बिना (सहन किये।) मैं कौन हूँ ? मेरी क्या जाति है ? मुझे क्या चाहिए ? मुझे क्या प्राप्त करना है और क्यों छोड़ना है ? इसके भेदज्ञान के भान के बिना ऐसे अनन्त अवतार में ऐसे दुःख भोगे हैं।

एक व्यक्ति कहता था, हमारे भाई कहते - पारसी लोग इनके पड़ौसी थे। (वे) सूअर के पैर को लोहे के सरिये के साथ बाँधकर, जैसे शक्करकन्द को शेकते है, शक्करकन्द; वैसे सूअर को अग्नि में डाल दिया, सिकने के बाद उसे खाते हैं। आहा...हा...! पूरे सूअर को उसे बाफकर ऐसे जीवित डालते हैं, फिर आग पर डालते हैं। ऐसे दुःख, भाई ! इसने देखे नहीं हैं, सुने नहीं है, इसे खबर नहीं है। यहाँ जरा सा दुःख और प्रतिकूलता होवे और अपमान होय है ! तुरन्त क्रोधित हो जाता है। हे हमारा अपमान !

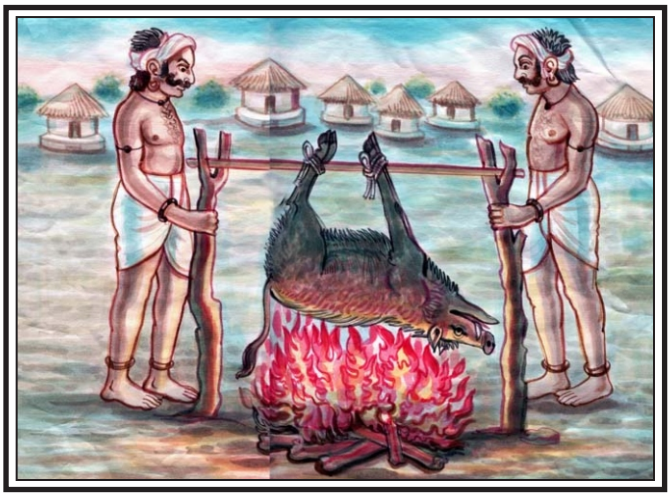

परन्तु मुफ्त में ऐसे दुःख बहुत बार सहन किये हैं। मूली में मुफ्त में बिक गया है। तेरी कोई कींमत नहीं है। तूने धर्म की कीमत किये बिना ऐसे दुःख सहन किये हैं। कहते है, करोड़ जीभों से भी नहीं कहे जा सकते। देखो ! अन्दर है न ? दो बैल बनाये हैं, हाँ ! बध-बन्धन बाद में आयेगा।

मुमुक्षु :- याद क्यों नहीं रहता है ?

उत्तर :- जन्म होने के छह माह बाद क्या हुआ था - याद रहता है ? यहाँ जन्म होने के बाद

महीने में पहले थे या नहीं ? है ? माँ की गौद में बैठकर रोते थे, ऊँ... ऊँ... करते थे - वह सब याद है ?

मुमुक्षु :- नहीं, माँ कहती है।

उत्तर :- परन्तु तुम्हें खबर नहीं है न ! इसी प्रकार यहाँ कहते है, देखो न ! कल वह लड़का ऊँआ... ऊँआ... करता था, बहुत रोता था न ? उस लड़के को, बालक को कुछ भान नहीं होता। उसे अनुकूल क्या, प्रतिकूल क्या - इसको खबर नहीं होती। बालपने में बहुत दुःख है, हाँ ! आगे आयेगा। बालपने में बहुत दुःख, अन्दर भान नहीं होता, आकुलता (होती है।) ऐसे बैठना होतो है ऐसे सुलावे, ऐसे सुलावे तो ऐसे बिठावे, उस बिचारे को कुछ पता नहीं होता। बालकपने मैं दुःख... दुःख... दुःख... बहुत दुःख है। समझे ? अभी उस दुःख की खबर है ? वहाँ तुम्हारी डोकरीने क्या किया था। 'आकडिया' में ? (याद नहीं), इसलिए नहीं था ? ऐसे अनादि का यह है। इसकी माँ कहे और याद करे; इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं और याद करता है, ऐसे इसे याद कराते हैं। कहो, भाई ! आहा...हा...!

कहते हैं - ऐसे दुःख बहुत सहन किये। '**अति संक्लेशभाव तैं भर्यो।**' तिर्यंच की बात है। समझ में आता है ? बहुत संक्लेश। देखो ! इसका दृष्टान्त दिया है। देखो ! इसका दृष्टान्त दिया है। देखो ! यहाँ गाय। गाय का। एक गाय है और मरने पर उसे (खाते हैं।) यहाँ एक गाय थी। हम (एक भाई के) मकान में थे। उसमें हुआ था उसे वह। क्या कहलाता है यह ? हड़कवा। गाय

बड़ी, हडकवा लो ! दो दिन फिरा करे। हमारे तो ऊँचा मकान और नीचे फिरती थी। साथ ही उसके पास एक बड़ है वहाँ गिरी और फीर पक्षी और कुत्ते आकर काटे/चाटे और चीखे/ चिल्लाए मर गयी। दो दिन नहीं पानी, नहीं आहार - ऐसे दुःख अनन्त बार (सह किये।) यहाँ तो संयोग से वर्णन करते हैं। भित... भित संयोग में इसकी दुःख की एकता कैसी होती है - ऐसा बताकर, मिथ्यादर्शन के फलरूप ऐसे (दुःख) भोगने पड़े है - यह कहते हैं। आहा...हा...! कहो समझ में आया ?

संक्लेश से मरा। वह गाय, में सब देखो न बहुत। ऊपर से ये चूहे होज में गिरते हैं। यह होता है न ? मिल का धगधगता गर्म पानी होवे, उसमें कबूतर पडते हैं, कबूतर बिचारे। बड़े सर्प निकले हों, वे गिरते हैं, वे जल जाए ऐसे। हाय... हाय.. ... ! ऐसे भव तिर्यंच में संक्लेशभाव से बहुत किये। वहाँ से मरकर '**घोर (स्वभ्रसागर में)...**' लो ! वहाँ से - तिर्यंच में से नरक में गया। ऐसी शैली ली है। वह पशु मरकर वहाँ से ऐसे बुरे परिणाम किये। बुरे-बुरे कि मरकर नरक में गया। '**भयानक नरकरूपी समुद्र में जा गिरा। स्वभ्रसागर -**' उसे उपमा दी - नरकरूपी समुद्र में जा गिरा। पशु में से निकलकर नारकी हुआ।

एक भेड़ को तो पीठ में से लोहे का धगधगता सरिया डालकर और मुँह में निकाला था। जीवित भेड़ ! पीठ में से धगधगता सरिया डालकर, कपड़े से पकड़कर ऐसे पीठ में से मुँह से (बाहर निकाला।) वह पीड़ा कैसी होगी ? मूल मे तो एकता (एकत्वबुद्धि) की पीड़ा है, परन्तु शास्त्रकार संयोग की स्थिति का दूसरा क्या वर्णन करे ? निमित्त से, संयोग से, व्यहार से सब वर्णन करते हैं। वह दशा भूल गया है। भगवान (आत्मा) आन्दकन्द प्रभु है। जिसकी नजरो में अतीन्द्रिय आनन्द आवे - ऐसा यह आत्मा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की श्रद्धा और ज्ञान को भूलकर ऐसे दुःख अनन्त बार सहन किये है। समझ में आया ? '**बड़ी कठिनाई से पार किया जा सके - ऐसे समुद्र समान घोर नरक में जा पहुँचा।**' गया नरक में।

नरकों की भूमि और नदियों का वर्णन

तहां भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो;
तहां राध-श्रोणितवाहिनी, कृमि-कुल-कलित, देह-दाहिनी।।९।।

अन्वयार्थ :- (तहां) उस नरक में (भूमि) धरती (परसत) स्पर्श करनेसे (इसो) ऐसा (दुख) दुःख होता है [कि] (सहस) हजारों (बिच्छू) बिच्छू (डसे) डंक मारे तथापि (नहिं तिसो) उसके समान दुःख नहीं होता; [तथा] (तहां) वहाँ [नरकमें] (राध-श्रोणितवाहिनी) रक्त और मवाद बहानेवाली नदी [वैतरणी नामकी नदी] है जो (कृमि-कुल-कलित) छोटे-छोटे क्षुद्र कीड़ोंसे भरी है तथा (देह-दाहिनी) शरीर में दाह उत्पन्न करनेवाली है।

भावार्थ :- उन नरकों की भूमिका स्पर्श मात्र करने से नारकियों को इतनी वेदना होती है कि हजारों बिच्छू एक साथ डंक मारे तब भी उतनी वेदना न हो। तथा उस नरक में रक्त, मवाद और छोटे-छोटे कीड़ोंसे भरी हुई, शरीर में दाह उत्पत करनेवाली एक वैतरणी नदी है, जिसमें शांतिलाभ की इच्छा से नारकी जीव कूदते हैं, किन्तु वहां तो उनकी पीड़ा अधिक भयंकर हो जाती है।

(जीवों को दुःख होनेका मूल कारण तो उनकी शरीर के साथ ममता तथा एकत्वबुद्धि ही है; धरती का स्पर्श आदि तो मात्र निमित्तकारण है।)।।९।।

अब, '**नरक की भूमि और नदी के दुःख**' का वर्णन करते हैं। लो ! अब यह कठोर बात वापिस (आई।)

तहां भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो;
तहां राध-श्रोणितवाहिनी, कृमि-कुल-कलित, देह-दाहिनी।।९।।

देखो ! यहाँ दृष्टान्त दिया है। देखो यह ! हजारों बिच्छु लगायें है, देखो ! एक जहरीला बिच्छु अच्छी तरह से काटे तो शोर मचाने लगा और तुरन्त दो घड़ी मे मर जाए। ऐसे वहाँ नरक में दूसरे बिच्छु बहुत कठोर करके और पूरे शरीर को (चिपकते हैं।) देखो ! यह चित्र किया। देखो यह ! एक तो नारकी नपुसंक है। यह सब माँस खाये, शराब पीये, शिकारकरे, सब लम्पटी वे मरकर वहाँ नरक में अनन्तबार गये। प्रत्येक जीव वहाँ नरक में अनन्तबार उत्पन्न हुआ है। हजारों बिच्छु उसे काटे, उसका दुःख न हो, उससे अनन्तगुना दुःख वहाँ है। आहा...हा...! कहो, भाई ! क्या है यहाँ तुम्हें ?

'**उस नरक में धरती स्पर्श करने से ऐसा दुःख होता है...**' जमीन को स्पर्श करने से, हाँ ! स्पर्श करने से अनन्तगुना दुःख होता है, मानों हजारों बिच्छु काटते हों। हजारो कठोर झहरीले बिच्छु ऐसे डंक मारे तो हाय... हाय... ! ऐसे एक-एक जगह दौड़े ! देखो ! यह सब दृष्टान्त दिये हैं। चारों ओर बिच्छु... बिच्छु... बिच्छु...!

आत्मा अनादिकाल से परिभ्रमण में रहा है, मोक्ष में तो गया नहीं। मोक्ष अर्थात् अपनी शुद्धता को तो प्राप्त नहीं हुआ। तब वह रहा कहाँ ? वह वर्णन पहले करते हैं। समझ में आया ? क्यों रहा ? कि मिथ्यादर्शन के कारण। मूल कारण तो मिथ्यादर्शन है। समझ में आया ? इसलिए फिर उसका क्रमवर्णन करेंगे। मिथ्यादर्शन, कुदेव-कुगुरु गृहीत-अगृहीत का; फिर समकित का; फिर ज्ञान का; फिर चारित्र का। ऐसा करके 'छहढाला' पूरी करेंगे। बारह भावना है। समझ में आया ?

नरक में भूमि का स्पर्श ऐसा कठोर-कठोर है। यह कोई डाभ (कुश) का अथवा गोखुर का

एक काँटा जरा लगे, चूभे, वहाँ इसे ऐसा हो जाता है। उससे अनन्तगुनी तीखी नरक की भूमि है। ऐसी तीखी जमीन है और जो नारकी जीव हैं... यहाँ से मरकर जहाँ नारकी उत्पन्न होते हैं, जो उनके उपजने का स्थान है, वे ऐसे उलटे हैं, ऐसे। ऐसे उलटे हैं। वहाँ उपजता है, वहाँ ऐसा नीचे गिरता है। वह उपजता है, वहाँ भी तीक्ष्ण शस्त्र भरे हैं, अन्दर से कठोर हैं, उसमें उपजता है। हाय.. हाय...! बिल में उपजा साथ नीचे नरक में। नीचे छत्रीस प्रकार के शस्त्र होते हैं। ऊँचे शस्त्र आते हैं न ? ऊँचे बहुत प्रकार के कठोर, तीक्ष्ण शस्त्रों को स्पर्श करे, वहाँ कट जाए ऐसे। उसमें नारकी एकदम ऊपर से नीचे गिरता है। कहो, समझ में आया ? यह राजा, महाराज माँस खानेवाले और ये सब लम्पटी होते है न ? माँस, शराब खानेवाले, शहद खानेवाले - ये सब मरकर वहाँ नरक के मेहमान होते हैं। है ? आहा...हा...!

अनादि का है। यह आत्मा कहाँ नया है ? शरीर ऐसे नये-नये धारण किये हैं। अनादि से इसने ऐसे भान बिना नरक में ऐसे दुःख सहन किये कहते हैं। उसमेंसे काटा जाना, छेदाजाना, भेदाजाना, आहा...हा...! फिर चिल्लाता है। ऐसे करते हजारों बिच्छु डंक मारते तो उसके जैसा दुःख नहीं होता। उसके जैसा दुःख नहीं होता अर्थात् क्या ? उन हजारों बिच्छुओं के दुःख की अपेक्षा भी यह दुःख बहुत है। ऐसा कहते हैं। वहाँ इतना अधिक दुःख है कि उन हजारों बिच्छुओं की तो उसके समक्ष गिनती नहीं, उतना दुःख नरक में है। परन्तु आनन्द को भूलकर तीव्र मिथ्यात्व का सेवन किया हो; जितना आनंद, सहजानन्द प्रभु आत्मा है, उसकी दृष्टि का भान नहीं होता, उसका ज्ञान नहीं होता, इसलिए अनन्त विपरीतता की है, विपरीतता; इसलिए उसके दुःख में अनन्तपना ही अन्दर में आता है। स्वयं आनन्दमूर्ति है, उससे विरूद्ध एक विकल्प राग, देह, वाणी, मन इनका अभिमान- यह हमारे, यह हम इस मिथ्याश्रद्धा में इसने ऐसे दुःख अनन्तबार सहन किये हैं। समझ में आया ?

उसमें से (उसे ऐसा लगता है कि) लाओ न नदी (वेतरणी नदी) में जाऊँ। ऐसा विचार होता है। बहुत दुःख लगता है, बहुत दुःख लगता है। हाय.. हाय..! चिल्लाता है। अरे..रे..! यह दुःख वह क्या होगा ? यहाँ बड़ा राजा हो, महल में सोता है, मखमलकी सय्या में से वहाँ जाकर पड़ता है नीचे। समझ में आया ? बड़े मील का मालिक अरबोंपति हो, महा करोड़पति हो, महा

अधर्म किया हो, अनेक मेंढक मारे हों, अनेक माँसादि खाते हो, शराब पीते हो, गुप्तपने मछलियां खाता हो। आहा...हा...!

'राजकोट' में एक बनिया कहता था - महाराज ! कितने ही बनिये ऐसे है कि बाहर मूर्गी लेकर (ऐसा कहते हैं) हलुआँ करना, हाँ ! मुर्गी का अच्छा हलुआँ करना। बनिया कहता था। आहा...हा...! फिर ऐसे रगड़ना हाँ ! कहो, ऐसे पाप, बहुतगलत कार्य ! मुर्गे को मारकर सुज़ी के हलवे जैसा ? घर में स्त्री तो करने दे नहीं, बनिये के घर में, इसलिए दूसरे के यहाँ एकदम बाहर करे। अब ऐसे काले कारनामे करे और मरकर नरक जाए। वह कुछ कीमत भरकर जाता है न ? या मुफ्त में जाता है ? हैं ? किंमत देकर जाता है। आहा...हा...!

यहाँ एक रस की पीड़ा हुई हो, रस होता है न ? रस। क्या कहते हैं ? रस की पीड़ा। वह पीड़ा बिच्छु काटे ऐसी, हाँ ! वह पीड़ा बहता न हो और ऐसी की ऐसी क्या कहलाता है उसका नाम ? वह पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... वे कहते थे। वह पीड़ा बिच्छु की पीड़ा से अधिक है। पीठ में नीचे निकलते तो खून जाए नहीं, पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... उसमें से। नरक की तो उससे अनन्तगुनी है। आहा...हा...! किसका मान करना और किससे अधिकपने होना, मनाना ? समझ

में आया ?

उसमें बहुत दुःख होता है, (इसलिए) '**(राध-श्रोणितवाहिनी) रक्त और भवाद बहानेवाली...**' वेतरणी नदी। यह वास्तव मैं तो नारकी वैतरणी नदी का रूप धारण करते हैं। नरक के दूसरे नारकी होवे है, वे शरीर का वैतरणी नदी का प्रवाहीरूप धारण करते हैं। उसमें अन्य दूसरे आकर पड़ते हैं। समझ में आया ? अन्दर ही अन्दर नारकी ही ऐसा करते हैं। '**रक्त और मवाद बहानेवाली (एक वैतरणी नामक नदी है) जो (क्रमिकुलकलित) छोटे-छोटे क्षुद्र कीड़ों...**' मगर-मच्छ, क्षुद्र कीड़े वे भी नारकी होते हैं, हाँ ! अन्दर, दूसरे नारकी ऐसे होते हैं। वह (अन्य) नारकी आता है (तो) काटता हैं, टुकड़े करते हैं, छेदते है। हाय... हाय...! बाहर से यहाँ आया, मानों नदी है, इसलिए शीतलता होगी...! वहां तो ... आहा...हा...! पुकार... पुकार... अरे..रे...! कहाँ जाना ? '**कीड़ों से भरी है तथा शरीर में दाह उत्पन्न करनेवाली है।**' लो ! समझ में आया ? शरीर में दाह उत्पन्न करनेवाली ऐसी नदी महादुःख (उत्पन्न करनेवाली है।)

'**भावार्थ : उन नरकों की भूमि का स्पर्शमात्र करने से नारकियों को इतनी वेदना होती है कि हजारों बिच्छु एक साथ डंक मारे तब भी उतनी वेदना न हो। तथा उस नरक में रक्त, भवाद और छोटे-छोटे कीड़ों से भरी हुई, शरीर में दाह उत्पन् करनेवाली एक वैतरणी नदी है।**' यह सब आचार्यों ने कहा है, हाँ ! भगवान ने देखा हुआ और सुना हुआ ऐसा कहा है। '**जिसमें शान्तिलाभ की इच्छा से नारकी जीव कूदते हैं, किन्तु वहाँ तो उनकी पीड़ा अधिक भयंकर हो जाती है।**' मूलतो एकत्वबुद्धि का (दुःख) है। देखो ! अन्दर लिखा है। बात तो सब संयोग से बतायी जाती है न ? खाना, खाता है, पीता है, टुकड़ा करते हैं, काट खाते हैं - यह सब संयोग है। वस्तु तो प्रभु आत्मा अपनी ज्ञान जाति को, आनन्द जाति को भूलकर देह-शरीर, वाणी, पुण्य-पाप के विकल्पों में एकत्व होता है, उसकी तारतम्यता के दुःखो का यह सब वर्णन है। कुछ समझ में आया ? आहा...हा...! अब इसमें बहुत तड़फड़ाता हो, वहाँ से निकलकर कहते हैं बाहर आवे। वैतरणी, ठीक ! उसमें रूप धारण किया है।

नरकों के सेमलवृक्ष तथा सर्दी-गर्मीके दु:ख

सेमर तरु दलजुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र;
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।१०।।

अन्वयार्थ :- (तत्र) उन नरकोंमें (सिपत्र ज्यों) तलवार की धारकी भाँति तीक्ष्ण (दलजुत) पत्तोंवाले (सेमर तरु) सेमलके वृक्ष [हैं जो] (देह) शरीर को (असि ज्यों) तलवार की भाँति (विदारैं) चीर देते हैं, [और] (तत्र) वहाँ [उस नरकमें] (ऐसी) ऐसी (शीत) ठण्ड [और] (उष्णता) गरमी (थाय) होती है [कि] (मेरु समान) मेरु पर्वतके बराबर (लोह) लोहेका गोला भी (गलि) गल (जाय) सकता है।

भावार्थ :- उन नरकोंमें अनेक सेमलके वृक्ष हैं, जिनके पत्ते तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होते हैं। जब दु:खी नारकी छाया मिलने की आशा लेकर उस वृक्ष के नीचे जाता है, तब उस वृक्ष के पत्ते गिरकर उसके शरीर को चीर देते हैं। उन नरकों में इतनी गरमी होती है के एक लाख योजन ऊँचे सुमेरु पर्वतके बराबर लोहेका पिण्ड भी पिघल* जाता है; तथा इतनी ठण्ड पड़ती है कि सुमेरु के समान लोहेका गोला भी गल+ जाता है। जिस प्रकार लोकमें कहा जाता है कि ठण्डके मारे हाथ अकड़ गये, हिम गिरनेसे वृक्ष या अनाज जल गया आदि। यानी अतिशय प्रचंड।।१०।।

---

* मेरु सम लोहपिंडं, सीदं उण्हे विलम्मि पक्खित्तं ।
ण लहदि तलप्पदेसं, विलीयदे मयणखंडं वा ।।

* अर्थ :- जिस प्रकार गर्मीमें मोम पिघल जाता है (बहने लगता है) उसी प्रकार सुमेरु पर्वतके बराबर लोहेका गोला गर्म बिलमें फेंका जाय तो वह बीचमें ही पिघलने लगता है।

X मेरुसम लोहपिंडं, उण्हं सीदे विलम्मि पक्खित्तं ।
ण लहदि तलप्पदेसं, विलीयदे लवणखण्डं वा ।।

X तथा जिस प्रकार ठण्ड और बरसातमें नमक गल जाता है (पानी बन जाता है) उसी प्रकार सुमेरु के बराबर लोहेका गोला ठण्डे बिलमें फेंका जाये तो बीचमें ही गलने लगता है। पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे नरककी भूमि गर्म है; पाँचवे नरक में ऊपर की भूमि गर्म तथा नीचे तीसरा भाग ठण्डा है। छठवें तथा सातवें नरककी भूमि ठण्डी है।

दसवीं -

सेमर तरुदलजुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र;
मेरुसमान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।१०।।

यह भी शास्त्र का पाठ है, हों ! उस नरक में जीव ने अनन्तबार मिथ्यादर्शन के कारण नरक की योनि धारण की है। कहते हैं '**तलवार की धार की भाँति तीक्ष्ण पत्तोंवाले सेमल के वृक्ष...**' उसके शरीर को चीर दिया। सिर पर पड़ा, नीचे जरा शीतलता लेने जाए, नदी में से नीकलकर नारकी जहाँ-तहाँ ऊपर से तलवार की धार जैसे पत्ते (पड़ते हैं।) पच्चीस-पचास मण के लोहे के गोले जैसे उसके फल होते हैं, (वे) सिर पर पड़ते हैं। समझ में आया ? वे तलवार की तरह चीर देते हैं।

'**(उस नरक में) ऐसी सर्दी...**' एसी सर्दी होती है (कि) एक लाख योजन का मेरुजितना गोला हो, यह मेरुपर्वत हे न ? एक लाख योजन का मेरुपर्वत है। एक योजन दो हजार कोष का, ऐसा लाख योजन का मेरु; ऐसा एक लोहे का गोला करे, ऐसी सर्दी वहाँ हे कि उस गोले के रजकण एक क्षण में बिखर जाएँ। मेरु जितना लोहेका गोला; जिसकी सर्दी में वह गोला डाले, अभी तो ऐसे डाले, नीचे न पहुँचे, वहाँ उसके सभी रजकण बिखर जाएँ, गल जाए, पानी की तरह समाप्त हो जाए। समझ में आया ? आहा...हा...! उसमें सागरोपम रहना होता है। भूल गया, परन्तु वह नहीं है ? भाई ! आहा...हा...! एक रात्रि कठिनता से जाए तो इसे कैसा लगता है ? अरे...! कोई नहीं और रात्रि ऐसी कठिनाई में गयी, तड़फड़ाहट मार-मारकर गयी। प्रातःकाल निकाला - यह मेरा मन जानता है - ऐसा कितने ही कहते है न ? भाई !

एकबार मास्तर कहते थे, हाँ ! मास्टर अकेले रहते थे। एकबार कहते थे। पूरी रात्रि ऐसा होता है। सब सोते हों, सोते हों और जागे तो भी उसे करे क्या परन्तु अन्दर ? यह मनुष्य की बात तो साधारण है। यहाँ तो नरक में लोहे का गोला ... मेरुजितना एक करे, उस उष्णता में डाले तो जैसे घी का पीण्ड पिघल जाता है, ऐसे उसकी गर्मी में पिघल जाता है। (मेरु पर्वत की) ऊँचाई जितना पिण्ड भी पिघल जाए '**इतनी सर्दी पड़ती है कि सुमेरुके समान लोहे का गोला भी पिघल जाता है।**'

'**जिस प्रकार लोक में कहा जाता है कि ठण्ड के मारे हाथ अकड़ गये...**' नहीं कहते ? ऐसा वहाँ शरीर सर्दी के कारण अकड़ जाता है और '**हिम गिरने से वृक्ष या अनाज जल**' जाता है। हिमगिरने पर अनाज भी जल जाता है न ! हिम पड़े तो यह बेंगन बहुत जलती है। हिम पडे न ? बैगन... बैगन सब सड़... सड़... सड़... हो जाते हैं। इतनी सर्दी नरक में है। दीमक के शरीर... जैसे धूप लगे तो तड़ - तड़ हो जाए, ऐसे ये वहाँ के नारकी के शरीर सड़... सड़... हो जाते हैं, टुकड़े इकट्ठे हो जाते हैं। ओ...हो...हो...! यह भगवान याद कराते हैं। आहा...हा...! मिथ्यादर्शन के फल की बात की। मिथ्याश्रद्धा - गृहित मिथ्यात्व या अगृहित मिथ्यात्व; गृहीत अज्ञान या अगृहीत अज्ञान और मिथ्याचारित्र ऐसे सेवन किये अनन्तकाल में। किसी दिन इसने सम्यग्दर्शन क्या है ? कैसे प्राप्त होता है ? उसकी विधि भी कभी नहीं पकड़ी। आहा...हा...!

कहते हैं - '**अनेक सेमर के वृक्ष है, जिनके पत्ते तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होते हैं। जब दुःखी नारकी छाया मिलने की आशा लेकर उस वृक्ष के नीचे जाता है, तब उसे वृक्ष के पत्ते गिरकर उसके शरीर को चीर देते हैं।**' इतनी गर्मी कि लाख योजन का गोला भी गल जाता है। लो ! '**अतिशय प्रचण्ड ठण्ड के कारण लोहे में चिकनाहट कम हो जाने से उसका स्कन्ध बिखर जाता है।**' इतनी पीड़ा... वह सर्दी की। अनन्त उष्णता, अनन्त सर्दी। देखो न ! यह हिम पड़ती है तो ये पूरे वृक्ष जल जाते है। ऐसी सर्दी की पीड़ा, यह शरीर सब ऐसे मुरदे जैसे रहते हैं। समझ में आया ? वर्षा में नमक पीघल जाए - ऐसे मेरु समान लोहे का गोला पिघल जाता है। यह दसवीं (गाथा पूरी) हुई।

नरकों में अन्य नारकी, असुरकुमार तथा प्यास का दुःख

तिल-तिल करैं देहके खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड;
सिन्धुनीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।११।।

अन्वयार्थ :- [उन नरकों में नारकी जीव एक-दूसरेके] (देह के) शरीर के (तिल-तिल) तिल्लीके दाने बराबर (खण्ड) टुकड़े (करैं) कर डालते है [और] (प्रचण्ड) अत्यन्त (दुष्ट) क्रूर (असुर) असुरकुमार जातिके देव [एक दुसरे के साथ] (भिड़ावै) लड़ाते हैं; [तथा इतनी] (प्यास) प्यास [लगती है कि] (सिन्धुनीर तैं) समुद्रभर पानी पीनेसे भी (न जाय) शांत न हो, (तो पण) तथापि एक बूँद एक बूँद भी (न लहाय) नहीं मिलती।

भावार्थ :- उन नरकोंमें नारकी एक-दूसरे का दु:ख देते रहते हैं अर्थात् कुत्तों की भाँति हमेशा आपसमें लड़ते रहते हैं। वे एक-दूसरेके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं, तथापि उनके शरीर बारम्बार पारेकी* भाँति बिखरकर फिर जुड़ जाते हैं। संक्लिष्ट परिणामवाले अम्बरीष आदि जातिके असुरकुमार देव पहले, दुसरे तथा तीसरे नरक तक जाकर वहाँ की तीव्र यातनाओंमे पड़े हुए नारकियोंको अपने अवधिज्ञानके द्वारा परस्पर बैर बतलाकर अथवा क्रूरता और कुतूहलसे अपसमें लड़ाते हैं और स्वयं आनन्दित होते हैं। उन नारकी जीवों को इतनी महान प्यास लगती है कि मिल जाये तो पूरे महासागर का जल भी पी जायें तथापि तृषा शांत न हो; किन्तु पीनेके लिये जल की एक बूँद भी नहीं मिलती ।।११।।

'नरक में अन्य नारकी, असुरकुमार तथा प्यास का दु:ख।' देखो ! यहाँ काटते हैं, देखो ! है न ? ग्यारह आती है न यह ? वृक्ष और यह सब किया है, हाँ ! टुकड़े टुकड़े करते हैं। देखो ! हाथ कट जाता है। वह उपर से पड़ता है और सेमर के पत्ते ? कन्धा कट जाता है, पेर कट जाता है, आधा सिर कट जाता है, नाक कट जाती है। एक

*** पारा एक धातु के रस समान होता है। धरती पर फेंकने से वह अमुक अंशमें छार-छार होकर बिखर जाता है। और पुन: एकत्रित कर देनेसे एक पिण्डरूप बन जाता है।**

तो श्रद्धा कराते है कि ऐसा अनन्तबार हुआ है। यह कल्पित बात नहीं है। तुझे ऐसा अनन्तबार हुआ, बापा ! तू भूल गया, इसलिए कही वस्तु चली जाएगी ? अनादिका आत्मा है।

मुमुक्षु :- रविवार...

उत्तर :- नरक में एक समय का रविवार नहीं आता। अनन्त-अनन्त दुःख ! इसने निरन्तर खोटे परिणाम किये, निरन्तर खोटे भाव किये। उसके फल निरन्तर ही होते हैं। समझ में आया ?

तिल-तिल करैं देहके खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड;
सिन्धुनीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।११।।

ऐसा कहाँ लीखा है। यहाँ नारकी किये है न ? मार-काट करते है, देखो ! हाथ कट गया है, नारकी-नारकी अन्दर ही अन्दर; वह असुरदेव खड़ा है। फिर नारकी नारकी को (मारते हैं।) वह उसका सिर काटता है, उसका हाथ काटता है, उसका वह काट देता है। है ? यहाँ होता हे न मनुष्य को ? मनुष्य-मनुष्य में नहीं होता ? काट देते हैं, चीर देते हैं। ओ...हो...हो...!

संवत् १९९४ में एक ब्राह्मण था। (एक भाई) कहते थे - काच्छियों और ब्राह्मणो में खेत के लिये बड़ी लड़ाई हुई। काछी और ब्राह्मण बड़े लट्ठ जैसे हों ! तेरह चोट मारी सब टुकडे हाँ ! घाव हुआ घाव ! खून तो ऐसा बहता जाए। बाजार में निकला तो ऐसा खून का प्रवाह निकले बलशाली व्यक्ति न, ऐसे का ऐसा वहाँ से घर जाकर फिर पड़ा। लहुलुहान... लहुलुहान...! यह तो अनन्तवें भाग की पीड़ा है। नरक में तो बापू ! उससे अनन्तगुनी भाई ! अनन्तानुबन्धी की कषाय तीव्र हे न ? हैं ? अनन्तानुबन्धी का क्रोध, अनन्तानुबन्धी का लोभ आहा...हा...! मिथ्यात्वरूपी

अनन्त, उसे अनुबन्ध करके जो विकार उत्पत करता है, (उसके फल में) उसके संयोग में चीखकर पुकारता है; एक पल का भी सुख नहीं है।

धर्म प्राप्त करना दुर्लभ है। ऐसी-ऐसी गति में भटकते हुए यह धर्म कुछ पाया नहीं। आचार्य महाराज ने 'बोधिदुर्लभ भावना' में यह सब वर्णन किया है। 'स्वामी कार्तिकेय' ! धर्म, यह कहीं लौकिकमें साधारण मानते हैं - ऐसी चीज़ नहीं है। अलौकिक आत्मा अन्दर, भगवान आत्मा, अकेला ज्ञान का सागर प्रभु है। जैसे यह दुःख के सागर में नरक में भटका है, वैसा ही भगवान अन्दर ज्ञान का सागर है। उस ज्ञान के सागर में... उसमें कहीं आया था न ! सवेरे का याद आया था 'परखे गुण की थैली' - ऐसा कहीं आया था, हाँ ! कही आया था। सवेरे फिर ऐसा पाठ आया था - 'परखे गुण की थैली'। कहीं आया अवश्य था। भजन में कहीं, चाहे जहाँ क्या पता पड़े बहुत जगह होता है। यह गुण की थैली आत्मा। रूपयों की थैली भरी होती है या नहीं ? चावल की थैली, रूपयों की थैली। ऐसे ही यह गुण की थैली। अकेले अनन्त रत्न - ज्ञान, दर्शन, आनन्द की थैली आत्मा है। 'परखे' (अर्थात्) उसकी परीक्षा करे तो उसे सम्यग्दर्शन होवे तो उसके जन्म-मरण मिटें तो यह दुःख मिटे, वरना तो मिटना नहीं है। कहो, समझ में आया ? 'परखे गुण की थैली। यह परीक्षा कर, बापा ! ऐसा तो तूने भान बिना सब किया। दुनिया की परीक्षा की। हीरा, माणेक कि की और वह की परन्तु आत्मा की परीक्षा नहीं की।

कहते हैं - '**(उस नरक में नारकी जीव एक-दूसरे के) शरीर को -**' देखो ! '**शरीर के तिल के दाने जैसे टूकड़े कर देते हैं...**' टूकड़े... टूकड़े... टूकड़े... समझ में आया ? एकबार एक व्यक्ति 'मुम्बई' में रास्ते में जा रहा था। वहाँ एक व्यक्ति भुजिया करता था। कसाई... कसाई...! वह पच्चीस, पचास, सो मुर्गी के अण्डे ऐसे-ऐसे बच्चे छोटे; उन्हे जरा ऐसा आटा डाले तो नजदीक आवे। पूरा हाथ में लेकर उसकी टांगे तोड दी, चने का आटा लपेटकर एक बच्चे का एक भुजिया (बनाता था।) एक व्यक्ति निकला। (उसने देखा) यह क्या करता है ? एक-एक इतना बच्चा; अण्डा टूट गया और मुर्गी का इतना बारीक बच्चा; पैर तोड़ दे। पूरा लेकर चने के आटे में तल डाले। कीमत ले रूपये का सेर। यह तो पहले की बात है हाँ ! पचास-साठ वर्ष पहले की। लो ! यह तिर्यंच के ऐसे तो प्रत्यक्ष दुःख है। वह आगे कहेंगे हाँ ! वह तो तुम प्रत्यक्ष देखते

हो। समझ में आया ? भूल जाता है।

(यहाँ कहते हैं) तिल-तिल जितने टूकड़े करते हैं। '**अत्यन्त क्रूर असुरकुमारजाति के देव, (एक-दूसरे के साथ भिड़ाते हैं।)**' देखो ! आया है, भिड़ाते हैं, देखो ! यहाँ काठी फुरसत में होते है न ? शाम को बैठकर फिर पाड़ों को लड़ाते हैं, मुर्गों को लड़ाते हैं; मुर्गे लहुलुहान हो जाते हैं, पाड़ो होते हैं और फिर बैठे-बैठे देखते हैं। ऐसे यह असुरकुमार भी नारकियों को परस्पर भिड़ाते हैं; बैठे-बैठे देखते हैं। काठी समझते हैं ? काठी होती है न ? ऐसे फुरसत से बैठते हैं, कुछ काम नहीं। पाड़ा लाकर फिर सिर में मारते हैं। लहुलुहान एक-दूसरे, हों ! अर्धमृतक जैसे हो जाते हैं। देखेत हैं। ऐसे ही नारकियों को परस्पर लड़ाकर असुरकुमार भिड़ाते हैं, अन्दर पीड़ा करते हैं। आहा...हा...! असुरकुमार एक-दूसरे को लड़ाते हैं।

'**इतनी प्यास (लगती है कि) समुद्रभर पानी पीने से भी शान्त नहीं हो सकती...**' सम्पूर्ण स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य योजन में पानी भरा है। अन्तिम समुद्र है न ? असंख्य योजन में मीठा पानी भरा है, हाँ ! उसे दे तो कड़ाई में एक बिन्दु पड़े - इतनी प्यास लगती है। इतना पानी (पीने की प्यास लगती है) परन्तु एक बूँद नहीं मिलता। प्यास इतनी कि पूरा समुद्र देवे तो भी बुझे नहीं। यह अतिशयोक्ति होगी ? कारण है, प्रभु ! तेरे स्वरूप में अनन्त शान्ति, आनन्द है; उससे विरुद्ध पड़ा हुआ कषायभाव, ऐसा तीव्र, ऐसा तीव्र की जिसकी तृषा के दुःखों का (पार नहीं है)। तृषा तो संयोग से बात की है परन्तु उसमें इतनी तृषा और इतने ममता के परिणाम हुए हैं। हाय... हाय... अरे...! यह पानी बिना कैसे निकाला ? ३३ सागर निकाले। कितने ?

एक सागरोपम में दश क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम में असंख्यात अरबों वर्ष ! अब यह तो इतना है वहाँ, ३३ सागर अर्थात् (क्या) ? ऐसे तो अनन्त तेतीस सागर एक नरक में किये। समझ में आया ? और एक नरक में भी जाए और फिर वापस जाए - ऐसे लगातार जाए तो पहले नरक में आठ बार जाए, भाई ! समझ में आया ? पहला नरक है न ? वहाँ से निकलकर दूसरी बार, तीसरी बार लगातार जाए तो पहले नरक में आठ बार जाए। दूसरे नरक में लगातार सात बार जाए। तीसरे में छहबार; चौथे में पाँच बार; पाँचवे में चार बार, समझ में आया ? छठवें

में तीन बार और सातवे में दो बार। सातवें नरक का नारकी लगातार दो बार जाता है। वें तीस सागर के दुःख भोगकर फिर पशु होता है, फिर मरकर वहाँ जाता है। समझ में आया ? भगवान के ज्ञान में मित्यादृष्टि के ऐसे भव उसने अनन्तबार किये, (यह जाना गया है।)

पहले नरक में से कठिनाईसे एक सागर से निकले, वहाँ फिर दूसरी बार जाए। एक अन्तर्मूहूर्त का पशु आदि का भव करे, हाँ ! भाई ! पहले नरक में एक सागरोपम के दुःख। जघन्य दस हजार वर्ष; उत्कृष्ट एक सागर; जिसकी दश क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम की स्थिति। जिसमें दुःख की इतनी पीड़ा कि जिसमें सर्दी (इतनी) कि एक मेरूपर्वत (जितना) लोहे का गोला गल जाए। उसमें इसने एक सागर व्यतीत किया। वहाँ से निकलकर अन्तर्मुहूर्त का कोई तिर्यंच हुआ। समझ में आया ? मच्छ। अन्तर्मुहूर्तमें वापस वहाँ आया। ऐसे-ऐसे लगातारपहले नरक में आठभव (किये) समझ में आया ? ऐसे दूसरे नरक की तीन सागर की स्थिति है न ? सात भव लगातार (करे), वहाँ से मरकर पशु और पशु में से वहाँ आवे, मनुष्य में आवे और मनुष्य मरकर वहाँ जाए। आहा...हा...!

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यह तो कहते हैं। बाकी समझ ले, आत्मा का ज्ञान कर, आत्मा की कींमत कर; दूसरी कीमत छोड़ दे, उसके लिए तो यह बात चलती है। शरीर मेरा और पैसा हमारा और धूल हमारी... अभी तो आगे कहेगें। समझ में आया ? किसी को कुछ अधिक पैसे हो गये हों तो उसकी जलन, अपने को कम होवे तो उसकी जलन। किसी का पुत्र होवे और उसे अच्छा होवे तो उसकी जलन, अपना पुत्र खराब होवे तो उसकी जलन। यह तो जलन की कितनी बात करना इसे ? भाई ! बाप लिखे कि भई ! ऐसा मत करो तो यह कोई माने ? लड़के स्वतन्त्र है या नहीं ? पाप करने में।

मुमुक्षु :- कहा करते है न ?

उत्तर :- कौन कहा करता था ? कोई नहीं करता। यह तो उसे ठीक लगे तो मानता है। तुम्हें मानता है वह ?

कहते हैं - ओ...हो...हो...! यह नरक के दुःख ! आहा...हा...! आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एक - ऐसे एक बार नहीं; ऐसे नारकी के भव अनन्तबार किये और अनन्तबार

पशु में आकर, मनुष्य में आकर वहाँ गया। भाई ! परन्तु भूल गया। नहीं ? यह बंगला देखकर ! आहा...हा...! भाई ! परन्तु तू है या नहीं ? है तो अनादि का है या नया है ? यदि अनादि का है तो कहीं रहा है या नहीं ? कहाँ रहा है ? पहली बात तो यह लिखी है यहाँ तो। मिथ्यादर्शन के कारण कहाँ रहा है ? रहा है या नहीं ? तू है या नहीं ? कहाँ रहा ? ऐसे नरक के अन्दर। आहा...हा...!

तिल-तिल जितने टुकड़े करते हैं। समझ में आया ? तथापि फिर वे टुकड़े टुकड़े हो जाए - ऐसा स्वभाव है या नहीं ? इकट्ठे हो जाए - ऐसा स्वभाव है। तृषा इतनी लगती है, तथापि एक बूँद पानी नहीं मिलता। असंख्यात समुद्रपानी के आवें तो भी तृषा बुझे नहीं, इतनी तृषा और मिले नहीं एक बूँद। कहो, यह बात सत्य होगी ? है ? भाई ! उसके (आत्मा के) आनन्द की अन्तता क्या कहना ! ऐसे ही उसके उल्टे दुःख की अनन्तता क्या कहना ? यहाँ तो ऐसा वर्णन करते हैं। समझ में आया ? अनन्तानुबन्धी शब्द का प्रयोग किया है न ? यह कारण है। भगवान आत्मा अनन्त शान्त और आनन्द का रस है, उसे भूलकर 'पर मेरे और मैं उनका' ऐसे अनन्त संसार की तीव्रता के कषाय परिणाम, उसकी तृषा के दुःख अनन्त ही होते हैं। आहा...हा...! परन्तु कुछ माप करना ही नहीं आता। क्या कहे ? समझ में आया ?

टुकड़े-टुकड़े करते हैं, वापस मिल जाते हैं। '**संक्लिष्ट परिणामवाले अम्ब और अम्बरीष...**' वहाँ के देव है, परमाधामी। जैसे यहाँ जेलर होते हैं न ? ऐसे वहाँ होते हैं। तीन नरक तक होते हैं, हाँ ! फिर तो नारकी परस्पर (लड़ते है।)... '**देव पहले, दूसरे, तीसरे नरक तक जाकर, वहाँ के तीव्र दुःखी नारकियों को, अपने अवधिज्ञान से वैर बताकर अथवा क्रूरता और कौतूहल से आपस में लड़ाते हैं...**' देख, यह तेरे बाप को ऐसा किया था, हाँ ! तुझे पता नहीं, तुझे भी पूर्व में मारा डाला था। देखो ! इसने तुझे ऐसा किया था, तुझे वहाँ कुएँ में धकेल दिया था, अग्नि में डालदिया था, सेक दिया था। देख यह। वह यह मनुष्य, देख यह नारकी - ऐसा करके असुरकुमार (उन्हें) आपस में लड़ाते हैं। कुत्तों की तरह.. जैसे कुत्ते इकट्ठे होते हैं, देखे न ? आहा...हा...! अक कुत्ती को आठ कुत्ते लगे थे, एक बार ऐसे, पींख डालते हैं, पींख डालते हैं कुत्ते। ऐसे कुत्तों की तरह नारकी परस्पर लिपते हैं।

'**स्वयं आनन्दित होते हैं।**' कौन ? वे देव प्रसन्न होते हैं। आहा...हा...! एकबार हमारे यहाँ

'चमार' गाँव है न ? 'पालेज' के पास, अभी 'नदीपुरा' नाम दिया है। 'पालेज' से चार-छह गाँवा दूर है। एक बार गये थे। एक गोरा (अंग्रेज) आया था। बारह हिरण... एक हिरण को ऐसे मारा; मारकर फिर ऐसे कूदा, ऐसा प्रसत... ऐसा प्रसत... ऐसा प्रसत... आहा...हा...! देखो न ! यह तो कुकर्म (करते हैं।) 'चमार' नाम का गाँव था। 'पालेज' से 'भरूच' के बीच आता है। वहाँ एक बार गये थे। वहाँ बात करते थे, एक गोरा आया था। हिरण को मारा। सब मुसलमान, पूरा गाँव मुसलमान। हिरण को मारा और ऐसे वह हिरण उछला तो स्वयं साथ में उछला। आहा...हा...! वह नारकी जैसा है या नहीं ? क्या है ? उससे तो अनन्तगुनी पीड़ा वहाँ नरक में है। ऐसे जीव वहाँ हर्षित होते हैं। कौन ? वे मारनेवाले, लड़ानेवाले। आहा...हा...!

'**नारकी जीवों की इतनी प्यास लगती है कि यदि मिलजाए तो एक महासागर का पानी पी जाए...**' मिलती नहीं एक बूँद। है न ? '**तो पण एक न बूँद लहाय।**' पानी की एक बूँद भी नहीं मिलती। आहा...हा...! इतनी प्यास ! यहाँ तो एक जरा (देर) इसे हो जाए तो तड़फड़ता है। कोई पानी नहीं लाता, इतना-इतना कहते है तो कोई सुनते नहीं हमारा वचन... (कल) तक तो सब पालते थे परन्तु अब यह जरा हमारा शरीर शिथिल पड़ गया, वहाँ हो रहा ? हम चले गये ? मर गये ? - ऐसा कहते हैं या नहीं ? कहते हैं, कहते हैं। मैंने तो दूसरों की बात की हैं, हाँ ! दूसरों की बात थी। ऐसा ज़रा दो-चार बार बुलावे और जवाब नहीं दिया (तो कहे) यह लो, हमारा वचन क्या है ? अभी तक तुम यह सब करते थे, और हम शिथिल पड़े, खटिया पर पड़े वहाँ ऐसा करते हो ? आहा...हा...! कहो, भाई ! अज्ञानी मूढ़ भ्रम में हैरान हो गया। भान नहीं है कि मैं मेरे कारण दुःखी हूँ; किसी (अन्य) के कारण नहीं। ऐसे नरक के अन्दर... एक बूँद भ नहीं मिलती। आहा...हा...! समझ में आया ?

यह यहाँ भिड़ाते हैं, देखो ! यह क्या कहते हैं ? चिर-प्यास। पेट में प्यास लगी है न ? वह आकर भाला मारता है। भाला मारता है, देखो ! यहाँ काट डालता है, और यहाँ भाला मारता है। हाय... हाय.. मुझे प्यास लगी है तो वह (दूसरा) कहता है, ले ! लोहे का उबलता हुआ पानी (रस) पिलाता है, लोहे का उबलता पानी ! जैसे कथीर का होता है न कथीर ? गर्म-गर्म रस। अरे...! तेज़ाब ! उससे अनन्तगुना तेज तेज़ाब बनाकर वह इसके मुँह में पिलाता है। कहो, भाई ! है ! यह सब इसने भोगा है। यहाँ जरा हो वहाँ ऐं... ऐं... हो जाता है, बापा ! और सच्ची श्रद्धा

करनी हो तो कहे, अरे...! ऐसा होगा, अरे...! अमुक होगा, दुनिया रोकेगी, जगत रोकेगा, ऐसा रोकेगा। यह करने जाऊँगा तो अपने लड़को का विवाह नहीं करने देंगे, लड़कियां नहीं देंगे, अमुक नहीं रहेगा, अमुक नही देगा, अकेला हो जाऊँगा...! मर गया... आहा...हा...!

वह हाथ जोड़ता है, हाँ ! देखो ! ऐसे हाथ जोड़ता है। भाई साहब ! रहने दो न ! उसका मुँह ऐसा-ऐसा होगा ? भूत जैसा। असुरकुमार उसे भिड़ाता है, मारता है। लोहे का तीव्र (रस) करके (कहे) ले, पी यह। भाई साहब ! मुझे तो प्यास लगी है। यहाँ कहाँ पानी था अभी ? यह तो यह है। हाय... हाय... कहता है। ऐसे दुःख अनन्तबार सहन किये हैं।

नरकोंकी भूख, आयु और मनुष्यगति प्राप्तिका वर्णन

तीनलोकको नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय;
ये दुख बहु सागर लौं सहै, करम जोगतैं नरगति लहै।।१२।।

अन्वयार्थ :- [उन नरकोंमें इतनी भूख लगती है कि] (तीनलोक को) तीनों लोक का (नाज) अनाज (जु खाय) खा जाये तथापि (भूख) क्षुधा (न मिटै) शांत न हो। [परन्तु खाने के लिये] (कणा) एक दाना भी (न लहाय) नहीं मिलता। (ये दुख) ऐसे दुःख (बहुसागर लौं) अनेक सागरोपम काल तक (सहै) सहन करता है, (करम

जोगतैं) किसी विशेष शुभकर्मके योगसे (नरगति) मनुष्यगति (लहै) प्राप्त करता है।

भावार्थ :- उन नरकों में इतनी तीव्र भूख लगती है कि यदि मिलजाये तो तीनों लोक का अनाज एक साथ खा जायें तथापि क्षुधा शांत न हो; परन्तु वहाँ खाने के लिये एक दाना भी नहीं मिलता। उन नरकों में यह जीव ऐसे अपार दुःख दीर्घकाल (कमसे कम दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक तेतीस सागरोपम काल तक) भोगता है। फिर किसी शुभ कर्मके उदय से यह जीव मनुष्यगति प्राप्त करता है।।१२।।

अब, '**नरक की भूख, नरक की आयु और मनुष्यगति प्राप्ति का वर्णन।**' अब, यहाँ से मनुष्य लेते हैं। देखो ? नरक में से मनुष्य, उस प्रकार शैली है। समझ में आया ? उसमें भी ऐसा है।

तीनलोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय;
ये दुख बहु सागर लौं सहै, करम जोगतैं नरगति लहै।।१२।।

ऐसे दुःख जहाँ सहन किये। नरक में इतनी भूख लगती है (कि) तीन लोक के अनाज को '**खा जाए तो भी भूख नहीं मिटती।**' तीन लोक का अनाज कहा है। यदि पूरी दुनिया का अनाज पकाकर दे तो भी उसकी भूख नहीं मिटती। ओ...हो...हो...! सब अनन्तता की ही बात। बापू ! परन्तु तू अनन्त स्वरूप है न ! उससे विरुद्ध गया तो सब वेदन अनन्त ही होता है। समझ में आया ? संयोग भले थोड़ा हों, परन्तु अन्दर प्रतिकूलता की वेदना अनन्त ही होती है। आहा...हा...!

'**खाने को एक दाना भी नहीं मिलता...**' इतनी भूख की पीड़ा। तीन लोक का अनाज पकाकर दे तो स्वाहा (हो जाए।) अग्नि में जैसे कण डाले ऐसे स्वाहा हो जाए, परन्तु एक कण नहीं मिलता। '**ऐसा दुःख (बहुसागर लौं...)**' बहु सागर - ३३-३३ सागर। पहले नरक में एक सागर, तीन सागर, सात सागर - ऐसे करते-करते दस सत्रह, बाईस, तेतीस (सागर-इतने काल) तक सहन करता है। ऐसे करते हुए कभी कदाचित् ऐसा शुभभाव हो जाए, कोई विशेष शुभ परिणाम; समझे न ? उसके कारण नरगति - मनुष्यभव मिलता है।

अब, इस मनुष्यभव में भी मिथ्यादर्शन के कारण, आत्मज्ञान के बिना कैसे दुःख प्राप्त किये, उसका वर्णन करेंगे...। (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)